Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 GISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

ठुमरी की उत्पति और विकास

डॉ0 विजय कुमार सिंह
संगीत शिक्षक,
रामबाबू + उच्च वि0 हिलसा, नालन्दा।

शोध आलेख सार – भारतीय शास्त्रीय संगीत में मुख्यतः कई गायन शैलियाँ विद्यमान हैं। ध्रुपद–धमार, ख्याल जो शास्त्रीय गायन शैली के अन्तर्गत आते हैं। ख्याल गायन शैली के बाद उप–शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, होरी आदि आते हैं। भारतवर्ष में मुख्यतः चार ठुमरी के घराने विकसित हुए, जिसमें पंजाब, लखनऊ, बनारस एवं गया (बिहार) मुख्य केन्द्र रहा है। इन्हीं चार घरानों से पूरे भारतवर्ष में ठुमरी गायन शैली का विकास हुआ और वर्तमान समय में इस गायन शैली को कलाकारों ने जीवित रखा है। ठुमरी शब्द का व्यवहार हिन्दुस्तानी संगीत की एक विशेष गेयविद्या के लिए किया जाता है। ठुमरी शब्द श्रृंगार रस एवं भक्ति प्रधान अभिन्यात्मक गायन शैली है। इस शैली में स्वर और शब्द का समान महत्व है। ठुमरी बन्दिशों में प्रयुक्त एक–एक शब्द के भाव को स्वर के माध्यम से अर्थवान बनाते हुए श्रोताओं को रसिक्त किया जाता है। इस शैली के प्रस्तुतिकरण में स्वर में माधुर्य लोच और नृत्य का भाव होना चाहिए। जिस प्रकार नर्तक हाव भाव से भाव अदा करता है, उसी प्रकार ठुमरी में गायक अपनी गायकी द्वारा भावों को प्रस्फुटित करता है। ठुमरी के गायकों में नवाब वाजिद अली शाह, बड़े गुलाम अली खा, बेगम अख्तर, महादेव मिश्र (बनारस), विदुषी गिरिजा देवी, पंडित छन्नुलाल मिश्र, रामूजी (गया), जयराम तिवारी, मौजूद्दीन खाँ, कामेश्वर पाठक, राजेन्द्र सिजूआर, पंडित राम प्रकाश मिश्र (छपरा) इत्यादि कलाकारों ने ठुमरी गायन शैली को आगे बढ़ाने में अविस्मरणीय योगदान रहा है। ठुमरी गायन शैली में चंचल प्रकृति के रागों में गायी जाती है। खमाज, भैरवी, पीलू, तिलककामोद, झिंझोटी, काफी एवं मांड इत्यादि रागों में ठुमरी गायन शैली को प्रस्तुत किया जाता है और श्रोता मंत्रमुग्ध होते हैं। ठुमरी गायन शैली में तालों का विशेष महत्व है। कलाकार प्रस्तुति करते समय जत, तीनताल एवं कहरवा तालों का चुनाव किया जाता हैं।

मुख्य शब्द – ठुमरी, उप–शास्त्रीय, अभिन्यात्मक, अविस्मणीय, राग, ताल इत्यादि।

भारतीय मान्यतानुसार गायन वादन एवं नृत्य का समन्वय ही संगीत है। ठुमरी की उत्पति विकास और वर्तमान शैलियों के विस्तृत विवेचन से ज्ञात होता है कि ठुमरी देशी संगीत की एक ऐसी उतर भारतीय गीतविद्या है, जिसे मूलतः नर्तकियाँ भावाभिनय सहित नृत्य के साथ गाती थीं। कालांतर में ठुमरी का विकास एक स्वतंत्र गायनविद्या के रूप में विकसित हुआ। वर्तमान समय में ठुमरी की अनेक शैलियाँ प्रचलित है।

स्वर, शब्द और ताल ये तीनों ही प्रत्येक गीतविद्या के मूल तत्व हैं। फलतः स्वरप्रधान गीतभेदों में शब्द व ताल सहायक रूप में होते हैं। ठुमरी गायन शैली में दो अंग प्रचलित हैं–पश्चिम अंग जिसे पंजाब अंग एवं पूरब अंग लखनऊ, बनारस एवं गया अंग की ठुमरी प्रचलित है। पश्चिम और पूरब अंग की गायन शैली में सिर्फ भाषायी अंतर पाया जाता है। पंजाब अंग के ठुमरी, दादरा व टप्पा गायी जाती है, जबकि पूरब अंग में ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, होरी इत्यादि गायन शैली प्रमुख रूप से गाया बजाया जाता है।

ठुमरी शब्द की निष्पति–इस शब्द की निष्पति 'ठुम' शब्द से मानी गयी है, जिसका अर्थ ठुमक चाल है। अतः स्पष्ट है कि यह गायकी ठुमक–ठुमक भावों की अभिव्यंजना करती है। यह गायकी स्वर और शब्द के मेल से ठुमकत्व भाव को ग्रहण करते हुए श्रोताओं को मनोरंजन करता है। संगीतज्ञों ने विभिन्न रूपों में इसकी अभिव्यंजना की है–

1. **श्री सुनील कुमार बोस** का विचार है कि 'ठुम' और 'री' इन दो शब्दों के योग से ठुमरी शब्द बना है। 'ठुम' शब्द ठुमक चाल अर्थात राधाजी की चाल और 'री' शब्द रिझावत अर्थात भगवान श्रीकृष्ण के मन को रिझाने की ओर इंगित करता है। अतः ठुमरी शब्द में राधा के ठुमक कर चलते हुए कृष्ण के मन का रिझाने की अभिव्यंजना है।
2. **उस्ताद बज्जन खाँ** के अनुसार ठुमरी शब्द से पद संचालन का बोध होता है अर्थात ठुमरी के शब्दों के भाव को स्वर के माध्यम से नृत्यात्मक अभिव्यंजना होती है। 'ठुम' शब्द ठुमकत चाल और 'री' शब्द रिझावन की ओर इंगित करता है। अतः ठुमरी शब्द में नायिका की ठुमक कर चलते हुए नायक के मन को रिझाने की अभिव्यंजना है।
3. **डॉ0 सुशीला पोहनकर** के अनुसार 'ठुमक' शब्द से ठुमरी की उत्पति है। ठुमरी एक श्रृंगार रस पूर्ण प्रेम गीत है। ठुमक से मतलब ठुमकना जिसका संबंध चाल से है, जैसे ठुमकते हुए चलना। गोस्वामी तुलसीदास की रचना 'ठुमक'–चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ' इस अत्यंत लोकप्रिय भजन में भी हमें इस शब्द का स्पष्ट संकेत मिलता है।
4. **सरला भिन्डे** के अनुसार ठुमरी मूलतः नृत्यगीत है, जो ठुमकदार पदभ्यास अभिनय (चेहरे और शरीर का) के साथ काव्य और भाव के साथ गायन है।

ठुमरी की उत्पति और विकास–परिवर्तन सृष्टि का नियम रहा है। संगीत के क्षेत्र में भी कालांतर में संगीत की विद्याएँ एवं शैलियाँ बदलती रही है। ध्रुपद की कठिन भाषा, कठिन शैली एवं कठिन नियमों के स्थान पर ख्याल गायकी का स्वतंत्र गायन प्रारंभ हुआ। ख्याल गायकी में कलाकार की सृजन शक्ति एवं कलात्मिकता की संभावनाएँ पूर्ववर्ती गायन शैली से अधिक थी। ख्याल गायकी के बाद विकसित शैली ठुमरी है, जिसकी रसप्रियता और भावात्मिकता ने रसिक प्रिय श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। ख्याल गायन के साथ ठुमरी एवं दादरा जो ठुमरी गायकी का एक प्रकार है, का दौर चल पड़ा। यह शैली पूर्णतया भावपूर्ण होती है। अधिकतर स्त्रीयुचित श्रृंगारिक भावनाओं का वर्णन होता है।

ठुमरी की उत्पति का मूल श्रोत नृत्य है। कालीदास के मालविकाग्निमित्र में वर्णित है, की मालविका ने राजा के समक्ष भाव भंगिमाओं को गान सहित नृत्य में प्रस्तुत किया था। कैप्टन विलियड ने 1934 ई0 में अपनी पुस्तक म्युजिक ऑफ इंडिया में इस शैली का वर्णन किया है। इस पुस्तक के

प्रकाशित होने के आठ साल बाद 1942 में उदयपुर निवासी श्री कृष्णानन्द देव व्यास ने संगीत राग–कल्पद्रुम नामक विशाल ग्रंथ कलकता से प्रकाशित करवाया जिसके रंगीन गान या रंगीन गान मजनुवा अध्याय में भैरवी, सिंधु भैरवी, सिंधु काफी, सिंधु मुलतानी, काफी, वरवा, सावनी वरवा, देस, पीलू, गारा, बिहारी, कालिगंडा, खम्माइची (खमाज) झिंझोटी तथा परज इत्यादि रागों में विभिन्न ठुमरीकारों की सैकड़ों ठुमरियाँ संग्रहित है। ठुमरी गायन में निरंतर परिवर्तन होते रहे हैं। ठुमरी दो प्रकार से गायी बजायी जाती है 1. बोल बांट की ठुमरी 2. बोल बनाव की ठुमरी।

ठुमरी का विकास–ठुमरी शैली के विकास में नबाव बाजिद अली शाह का बहुत बड़ा योगदान है। माना जाता है कि ठुमरी शैली का अविष्कार इन्होंने ही इजाद किया था। उन्होंने अख्तर पिया उपनाम से ठुमरियाँ बनाईं और उन्हें प्रस्तुत किया। बाजिद अली शाह नृत्य अभिनय के साथ ठुमरी गाते थे और साथ ही महफिलों में ठुमरी गायन को प्रश्रय दिया। ठुमरी का नृत्य के साथ गहरा संबंध है। यह नृत्य के साथ गायी जाती है ताकि नृत्य अभिव्यक्ति पूर्ण हो सके। उनके भाव दर्शकों को समझ में आये, यह विकास की पहली अवस्था है। एक व्यक्ति नाचता था और दूसरा गाता था। गीतों के भाव, मुख के हाव भाव, विभिन्न मुद्राओं के साथ प्रकट किये जाते थे। गीत का लययुक्त विभाजन होता था। साधारणतया नृत्य तीनताल या कहरवा में वंदिशें निबद्ध होती थी। इस दशा को विशुद्ध नृत्य ठुमरी की अवस्था कहा जाता है। लखनऊ के विन्दादिन महाराज और कालिकादास इस प्रकार के ठुमरी में बड़े प्रवीण थे। उन्होंने इस प्रकार के ठुमरियों की रचना की। फरूखाबाद के 'ललन पिया' भी इस तरह की ठुमरी बनाते थे। इस प्रकार की ठुमरी के बाद दूसरी अवस्था में ख्याल की तरह ठुमरी गायी बजायी जाने लगी। बाद में ठुमरी स्वतंत्र गायन के रूप में विकसित हुई और निरंतर इसका गायन होते आ रहा है। नबाव बाजिद अली शाह को उर्दू शायरी, नाट्य संगीत एवं नृत्य सभी विधाओं की ओर अत्यंत प्रेम था। उनके दरबार में ठाकुर प्रसाद नर्तक थे जिससे उन्होंने कथक नृत्य सीखा। ठाकुर प्रसाद से हीं बिन्दाविन महाराज एवं कालिकादिन महाराज ने नृत्य की शिक्षा प्राप्त की और लखनऊ घराने का नेतृत्व किया। अब्दुल रहीम ने बाजिद अली शाह का नेतृत्व किया। अब्दुल रहीम ने बाजिद अली शाह के बारे में लिखा है कि बाजिद अली शाह वे खुद कन्हैया बनते और उनकी बेगमें गोपियां बनती और रंगमहल की महफिलें गरम होती थी। बाजिद अली शाह और नबाव मिर्जा बाला कदर उर्फ कदर पिया से भी शादीक अली से ठुमरी सीखी थी। अवध, लखनऊ, बनारस, गया के छात्र भी शादिक अली से ठुमरी की शिक्षा प्राप्त की थी। अख्तर पिया और कदर पिया के बाद ललन पिया, सनद पिया, सुघड़ पिया आदि ने इस गायन शैली को आगे बढ़ाया। समय परिवर्तन के साथ–साथ रियासतों एवं घरानों ने अपने–अपने तरीके से ठुमरी गायन शैली को आगे क्रमबद्ध विकास हुआ। लखनऊ में बिन्दादिन महाराज, कालिका महाराज, बेगम अख्तर। बनारस में महादेव मिश्र, विदुषी गिरिजा देवी, गया में नकफोफा, वहाँ के पंडो, मुनीश्वर दयाल, मौजूद्दीन खाँ साहब, सोहनी जी महाराज, रामूजी, जयराम तिवारी, गोबर्द्धन मिश्र, कामेश्वर पाठक, राजेन्द्र सिजुआर, पंडित राम प्रकाश मिश्र (छपरा), पटना एवं पटना सिटी के जमींदारों एवं तवायफों, पंजाब में बड़े गुलाम अली साहब, बड़े गुलाम अली आदि ने इस गायन शैली को आगे बढ़ाया और अपनी गायकी से जनमानस में एक अमिट छाप छोड़ा। ठुमरी के विकास में भारत की तवायफों का भी विशेष योगदान रहा है।

आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं संगीत संस्थाओं ने भी ठुमरी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस युग के प्रख्यात संगीत विद्वान स्व0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने भी ठुमरी के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए लिखा हैः–

''ठुमरीचें गायन गर्हणीय मुष्ठींच नाहीं, इतकेंच कीं, ठुमरी उतम रीतीनं गातां मात्र आली पाहिजे।

अर्थात ठुमरी गान घृणित कदापि नहीं है। इतना हीं है कि उतम रीति से ठुमरी गाना आना चाहिए।

अतः आज के युग में ठुमरी की स्थिति को देखते हुए यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि ठुमरी एक श्रेष्ठ कलात्मक गेयविद्या है और भारतीय संगीत में उसका स्थान अन्यतम है। **राग भैरवी की ठुमरी (ताल कहरवा)**

स्थायी– कैसे कटे दिन रैन सजन बिना।
अन्तरा– जब गये मोहे सुधहुं न लेनहीं।
तड़पत हूँ दिन रैन सजन बिना।।

स्रोत ग्रंथ की सूची :–

1. ठुमरी की उत्पति, विकास और शैलियाँ–शत्रुघ्न शुक्ल
2. बिहार की संगीत परम्परा –गजेन्द्र नारायण सिंह
3. शास्त्रीय संगीत की मधुरिमा ठुमरी :– भारती राठौड़
4. ठुमरी परिचय :– श्रीमती लीला कालवर
5. म्यूजिकल हेरिटिजस ऑफ इंडियाः– डॉ0 एम0 आर0 गौतम
6. शोध–प्रबंधः– डॉ0 विजय कुमार सिंह